

पर्यावरण-संतुलन की वैदिक अवधारणा

सारांश

वैश्वीकरण के इस दौर में सम्पूर्ण मानव-समाज पर्यावरण-प्रदूषण की हाहाकारी समस्या से ग्रस्त है। तकनीकी, प्रौद्योगिकी, आर्थिक और सैनिक दृष्टि से पाश्चात्य देश वर्तमान में विश्व का नेतृत्व कर रहे हैं। दुर्भाग्य से उनकी जीवन शैली को हम सब अपना आदर्श समझ रहे हैं। यदि उनके एकांगी आदर्श को विश्व अपनाए रखता है तो पर्यावरण के संतुलन को बचाए रखना संभव नहीं होगा। पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने हेतु भारतीय आचार-विचार एवं भारतीय दर्शन को अपनाना होगा, जिसे वर्तमान सन्दर्भों में हेय दृष्टि से देखा जा रहा है। भारतीय आचार-विचार एवं जीवन का मूल आधार 'वेद' रहे हैं। जब तक हम पर पाश्चात्य श्रेष्ठता रूपी भ्रम का पर्दा नहीं छाया था, तब तक वैदिक चेतना ही भारतीय जन-जीवन को संचालित करती रही थी। इस पत्र में यह दर्शाने का उद्यम किया गया है कि मूल भारतीय चेतना, जो वैदिक चेतना से प्रेरित एवं संचरित है, ही विश्व के बिगड़ते पर्यावरण को ठीक कर सकती है।

मुख्य शब्द : पर्यावरण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, नासदीय सूक्त, तैत्तिरीय संहिता, ब्रह्माण्ड, बिग बैंग थ्योरी, ब्राह्मण ग्रंथ, इंद्र, विष्णु, प्रवर्ग्य, ब्रह्मोदन, शोषण, दोहन, प्राण, ब्लैक होल, सोम, अग्नि, संहिता, अन्नाद, ज्ञान, विज्ञान, विद्या, अविद्या, कर्म।



राज कुमार लाटा
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
राजकीय लोहिया (पी.जी.)
महाविद्यालय,
चूरु, राजस्थान

प्रस्तावना

पाश्चात्य प्रभाव के कारण वेदों पर एवं वैदिक साहित्य पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि उनमें जड़ प्रकृति की उपासना मात्र है या फिर ये तो चरवाहों के गीत मात्र हैं। हमें इससे सहमत नहीं होना चाहिए। इससे अलग हटकर अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि वेदों में सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर इसके नष्ट होने एवं इसके पुनर्निर्माण के सम्बंध में एक सुस्पष्ट दृष्टि मिलती है। यहाँ तक कि 'नासदीय सूक्त' में तो सृष्टि रचना से पूर्व की स्थिति पर विचार रखते हुए कहा गया है – तम आसीत्तमसा गूलमग्रे। इसका अर्थ है कि उस समय अंधकार से आवृत अन्धकार था, पदार्थ दिखाई नहीं दे रहे थे। परन्तु पदार्थ अवश्य ही उपस्थित रहा था। पदार्थों के दिखाई न देने के दो कारण थे – एक तो वे अपने कारण में छिपे थे, दूसरे उस समय प्रकाश का अभाव था। आधुनिक विज्ञान का यह सर्वसम्मत सिद्धान्त कि शून्य से कुछ भी उत्पन्न नहीं होता, वेदों में आज से हजारों वर्ष पूर्व अवस्थित रहा है। यदि हम वेदों द्वारा बताए सृष्टि सम्बन्धी तथ्यों को नहीं जानते हैं, तो हमारा इस समस्या से मुक्ति का प्रयास अधूरा होगा तथा आगे बढ़ने में बाधाओं का सामना करना होगा। हमें बाधाओं का सामना न करना पड़े, इसके लिए सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बंधित भारतीय अवधारणाओं से अपना अध्ययन प्रारम्भ करना होगा। पर्यावरण पर जो संकट छाया है, वह चीजों को भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझने से ही दूर होगा।

'ब्रह्माण्ड' की उत्पत्ति और पर्यावरण-संतुलन की अवधारणा

ब्रह्माण्ड के निर्माण हेतु जो नवीनतम सिद्धान्त आज स्वीकृत किया जा रहा है वह बिग-बैंग थ्योरी कहलाता है। इसके अनुसार किसी समय अत्यधिक ऊर्जा से युक्त किसी 'ब्लैक हॉल' या पिण्ड में विस्फोट हुआ जिसके परिणाम स्वरूप पदार्थ अन्तरिक्ष में फैल गया। उसी से विभिन्न आकाशीय पिण्डों का निर्माण हुआ। ये आकाशीय पिण्ड आज भी गतिमान हैं और इस गति के फलस्वरूप ये एक-दूसरे से दूर जा रहे हैं। इस सम्बन्ध में 'ऋग्वेद' का यह मंत्र दृष्टव्य है –

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहरत्रं वि तदैरयेथाम्॥

इस मंत्र के अनुसार गति दो प्रकार की होती है – एक 'केन्द्र से परिधि की ओर' तथा दूसरी 'परिधि से केन्द्र की ओर'। केन्द्र से परिधि तरफ

गति 'इन्द्र' 'प्राण' के कारण होती है और परिधि से केन्द्र की तरफ गति 'विष्णु' भी 'प्राण' के कारण होती है। ये दोनों गतियाँ साथ-साथ चलती रहती हैं, मानो दोनों में होड़ लगी हो। दोनों गतियों में से न कोई हारती है, न कोई जीतती है। इसी तथ्य को हम 'ब्लैक होल' के निर्माण के सन्दर्भ में लेते हैं। जब बहिर्गति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है, तो वह अन्तर्गति में परिणत हो जाती है। 'ब्लैक होल' का निर्माण भी इसी अन्तर्गति के फलस्वरूप होता है। 'ब्लैक होल' का आकर्षण इतना अधिक होता है कि उसमें जाकर कोई पदार्थ वापस नहीं आ पाता है। यहाँ तक कि प्रकाश भी नहीं। यहाँ अंधकार ही अंधकार नजर आता है, जैसा कि 'नासदीय सूत्र' में बताया गया है। अन्तर्विष्ट पदार्थों के कारण यह अत्यधिक ऊर्जा युक्त हो जाता है। जब यह अन्तर्गति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचती है, तो इसमें विस्फोट के साथ बहिर्गति होती है। यही बहिर्गति 'ब्रह्माण्ड' के निर्माण का कारण कही जा सकती है। 'ब्रह्माण्ड' के निर्माण के साथ ही इसमें विविध तत्व, जैसे जीव-जन्तु आदि उत्पन्न हुए और उनके आपस में सम्बन्ध स्थापित हुए। इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत् का निर्माण हुआ। मनुष्य भी जगत् का एक भाग हुआ, जिसका सम्बन्ध इन बाहरी एवं आभ्यांतरिक तत्वों के साथ रहा है। इसे ही प्रकृति और पर्यावरण के नाम से जाना गया है।

प्रकृति और पर्यावरण की वैदिक चेतना

पश्चिम, जहाँ प्रकृति को अपना दुश्मन मानता है वहीं हमारे 'वेद' प्रकृति से मैत्री का संदेश देते हैं। पश्चिम विज्ञान का प्रयोग जिस शोषणकारी ढंग से कर रहा है उसके विपरीत 'वेद' हमें विज्ञान के मित्रतापूर्ण उपयोग का संदेश देते हैं। पश्चिमी विचारधारा में प्रकृति को जड़ तथा मनुष्य को चेतन मानकर इन दोनों के बीच एक भेदक रेखा खींची गई है। उन्होंने प्रकृति को अपने से अलग मान लिया। इस भेद को स्वीकार कर विश्व के पर्यावरणीय संतुलन को गहरी चोट पहुँचाई जा रही है। वैदिक साहित्य इसके विपरीत प्रकृति एवं मनुष्य दोनों को एक बताता है। इस सम्बन्ध में शतपथ ब्राह्मण का यह वक्तव्य द्रष्टव्य है - तत्सृष्ट्वा तदेवा नु प्रतिशत इसका अर्थ है कि प्रजापति सृष्टि को बनाकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गया। जब हम प्रकृति को अपना भाग मान लेते हैं, तो फिर उसका शोषण भी बन्द कर देते हैं। वास्तव में प्रकृति और मनुष्य में कोई भेद है ही नहीं।

'शोषण' और 'दोहन' में अंतर

प्रश्न उठता है कि हम प्रकृति का शोषण न करें, तो उसका उपयोग किस प्रकार करें? क्या उपाय हो कि पर्यावरण का संतुलन भी बना रहे तथा हमारा जीवन भी सुखमय हो जाए। इसका उपाय यह है कि हम पर्यावरण एवं प्रकृति का शोषण बन्द कर उसका विवेकपूर्ण 'दोहन' करें, 'शोषण' नहीं। शोषण में जहाँ हम प्रकृति से लेते ही लेते हैं, बदले में कुछ देते नहीं और जिससे लिया है उसकी रक्षा के बारे में कुछ भी नहीं सोचते। इसके विपरीत 'दोहन' में जिससे जब हम कुछ लेते हैं, उससे पहले उसकी रक्षा कि चिंता अवश्य करते हैं। इस सम्बन्ध में गाय का उदाहरण उपयुक्त है। गाय से हम दूध, बैल आदि प्राप्त करते हैं, तो उसकी रक्षा, उसका पोषण भी

करते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी का उदाहरण हमारे समक्ष उपस्थित है। 'अथर्ववेद' के 'पृथ्वी सूक्त' में हम 'पृथ्वी' के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि हे भूमि! जो भाग मैं तुम्हारा खोदूँ, वह शीघ्र ही फिर से भर जाए। हे इच्छाओं को पूरा करने वाली भूमि! मैं तुम्हारे हृदय को चोट न पहुँचाऊँ -

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।

मा ते मर्मविमृगवरि मा ते हृदयमर्पिपम्॥

इस मंत्र में हमें पृथ्वी के शोषण की नहीं, बल्कि दोहन की राह दिखाई गई है, क्योंकि शोषण के फलस्वरूप अंतिम परिणति के रूप में हमारी, मानव जाति की, हानि ही होगी।

ऊर्जा की परिवर्तनशीलता

वैदिक साहित्य में 'अग्नि' और 'सोम' के द्वन्द्व के माध्यम से ऊर्जा की परिवर्तनशीलता को भी बतलाया गया है। इनकी एक दूसरे पर निर्भरता व इनकी एकता को भी बताया गया है। 'मैत्रायणी संहिता' में कहा है - 'अन्नं वै सोमः' अर्थात् 'सोम' अन्न है। इसी प्रकार 'तैत्तिरीय संहिता' में कहा गया है 'अग्निर्वैदेवानामन्नाद् अर्थात् 'अग्नि' अन्नाद् है, वह अन्न को खाता है। इन उदाहरणों से पदार्थों में ऊर्जा का रूपांतरण समझ में आ जाता है। 'बृहज्जाबालोपनिषद्' में इसे और अधिक स्पष्ट किया गया है - 'अग्नीषोमात्मकं जगत्' अर्थात् जगत् 'अग्नि' सोमात्मक है। यहाँ जगत् को गतिशीलता का प्रतीक बताया गया है। गमनशीलता से तात्पर्य पदार्थ की परिवर्तनशीलता से है। 'यास्काचार्य निरुक्त' में छः भाव-विकारों के रूप में परिवर्तन के छः चरण बताए गए हैं - 'जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते, अपक्षीयते नश्यति' अर्थात् पदार्थ उत्पन्न होता है, अस्तित्व में आता है, बढ़ता है, बदलता है, क्षीण होता है और नष्ट हो जाता है।

'सोम' और 'अग्नि'

प्रश्न उठता है कि पदार्थ में परिवर्तन किस कारण होता है? इसका उत्तर हम दे सकते हैं कि पदार्थ अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होता है। उसमें कुछ जुड़ता है और कुछ निकलता है। इस प्रक्रिया में वह नया रूप धारण कर लेता है। वैदिक साहित्य में यही बताया गया है कि 'सोम' का 'अग्नि' में तथा 'अग्नि' का 'सोम' में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार से इनमें द्वन्द्व एवं मैत्री दोनों साथ-साथ, एक चक्र के रूप में, चलते 'शतपथ ब्राह्मण' एवं 'कौषीतकि ब्राह्मण' दोनों कहते हैं कि 'अग्नि' भी 'प्राण' है तथा 'सोम' भी 'प्राण' है। चूंकि 'अग्नि' और 'सोम' दोनों ही 'प्राण' हैं, इसलिए दोनों में मौलिक भेद नहीं है। इसी प्रकार 'ऋग्वेद' भी 'अग्नि' और 'सोम' में साख्य भाव को स्पष्ट करता है - 'अग्निर्जागार' तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये 'न्योकाः'।

इन मंत्रों के माध्यम से वैदिक साहित्य हमें ऊर्जा-परिवर्तन एवं ऊर्जा-संरक्षण पर वेदों का ज्ञान तो कराता ही है, साथ में ऊर्जा के उचित उपयोग की तरफ भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

'ज्ञान', 'विज्ञान' की अवधारणा

वैदिक साहित्य में 'एकदेववाद' तथा 'बहुदेववाद' के माध्यम से पर्यावरणीय संतुलन की ओर मनुष्य का विशेष ध्यान आकृष्ट किया गया है। इन अवधारणाओं को हम 'विद्या' और 'अविद्या', जिसे 'गीता' में 'ज्ञान' और 'विज्ञान' कहा गया है, के माध्यम से जान सकते हैं। 'अनेक से एक

की ओर जाना 'ज्ञान' का विषय है। इसके विपरीत 'एक से अनेक की ओर जाना' 'विज्ञान' का विषय है। इसे हम 'संश्लेषण' और 'विश्लेषण' के नाम से भी जान सकते हैं। 'वेद' और 'गीता' दोनों ही 'विद्या' तथा 'अविद्या' एवं 'ज्ञान' तथा 'विज्ञान' के समन्वय पर बल देते हैं। 'यजुर्वेद' में कहा गया है कि जो 'विद्या' अथवा 'ज्ञान' और 'अविद्या' अथवा 'कर्म' दोनों को साथ-साथ जानता है, वह 'अविद्या' के द्वारा मृत्यु को पार करके 'विद्या' के द्वारा अमृतत्व को प्राप्त करता है -

विद्याञ्चा विद्याञ्च यस्त द्वे दो भयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

इसी प्रकार गीता में भी कृष्ण द्वारा अर्जुन को 'विज्ञान' सहित 'ज्ञान' देने की बात कही गई है -

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।

स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य से हमें निर्देश मिलता है कि जीवन में 'ज्ञान' और 'विज्ञान' दोनों का संतुलित प्रयोग करना चाहिए। वेदों के परवर्ती काल से वर्तमान तक इस बात को भुला देने से भारतीय संस्कृति में एकांगिता आई और वही हमारे ह्रास का मुख्य कारण बनी। विज्ञान का जो उपयोग सर्वांगी होना चाहिए था, वह एकांगी होकर रह गया और हम प्रदूषण की खतरनाक दुनिया में जीने के लिए विवश हो गए।

'यज्ञ'

'यज्ञ' के माध्यम से वेदों ने हमें एक उदात्त जीवन-शैली दी है, जिससे हम प्रकृतिमय हो जाते हैं। 'तैत्तिरीय संहिता' में कहा गया है कि 'अग्नि' में 'सोम' की आहुति देना ही 'यज्ञ' है, जो 'भुवन' का केन्द्र है - यज्ञ माहुर्भुवनस्य नाभिम जिस पदार्थ की आहुति किसी अन्य पदार्थ को दी जाती तो दूसरे पदार्थ में पहला पदार्थ पूर्णतया आत्मसात् नहीं किया जाता है। यहाँ पदार्थ के दो भाग तैयार हो जाते हैं। जितने भाग को पहला पदार्थ आत्मसात् करता है, उतना अंश उस पदार्थ का 'अन्न' है, 'ब्रह्मोदन' है। 'जैमिनीय ब्राह्मण' कहता है-यत्सौम्यमाहरन्ति तेन ब्रह्मोदनः।। पदार्थ का जो अंश 'ब्रह्मोदन' नहीं बन पाता, वह पदार्थ से अलग होने के फलस्वरूप 'प्रवर्ग्य' कहलाता है। शतपथ ब्राह्मण इस बारे में इस प्रकार बताता है - अथयत्प्रावृज्यत तस्मात्प्रवर्ग्यः। पदार्थ से छिटककर अलग हो जाने वाला यह 'प्रवर्ग्य' किसी अन्य पदार्थ का 'ब्रह्मोदन' बन जाता है। इस प्रक्रिया को 'संगतीकरण' कहा गया है। पदार्थों का एक दूसरे से यह सम्मिलन ही 'यज्ञ' कहा गया है। 'गोपथ ब्राह्मण' के अनुसार 'प्रवर्ग्य' के बिना कोई 'यज्ञ' नहीं हो सकता है, इसलिए 'प्रवर्ग्य' को 'यज्ञ' का सिर बताया जाता है - शिरो वा एतद्यज्ञस्य। यत्प्रवर्ग्यः।

जब हम 'यज्ञ' की प्रक्रिया के सम्बंध में विचार करते हैं, तो खाद्य-श्रृंखला हमारे मस्तिष्क में उभर आती है। इसमें एक खाने वाला होता है, तो दूसरा खाया जाने वाला। हजारों प्रकार की खाद्य-श्रृंखलाएं संसार में चल रही हैं। सबका आधार 'यज्ञ' ही है। 'यज्ञ' का निर्वाह ठीक रूप में न होने पर पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ता है। जब किसी खाद्य-श्रृंखला में कहीं व्यवधान आ जाता है, तो वहीं से आगे का जीवन रुक जाता है। हमें समझना चाहिए कि प्रकृति में असंतुलन आ जाने से यह सुंदर

संसार नष्ट हो जायेगा। कवि डॉ. सुरेंद्र डी. सोनी की कविता 'सेज' का यह अंश हमें झकझोर कर रख देता है। 'विशेष आर्थिक क्षेत्र/जिन्हें तुम 'सेज' कहते हो/और जिनके नाम पर/खड़े कर-करके नारकीय कारखाने/सपनों का जो उत्पादन कर रहे हो तुम -/देखना.../यही कारखाने एक दिन/तुम्हारी बहू-बेटियों के/अनैच्छिक गर्भपात के कारण बन जाएँगे -/तरस जाओगे तुम/देखने को मुँह एक नवजात का..!'

निष्कर्ष

प्रतिस्पर्द्धा के इस क्रूर युग में एक आश्वस्ति हमारे पास अब भी सुरक्षित है। वह है पर्यावरण-संतुलन के प्रति वैदिक दृष्टि। वेदों की पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति वैदिक दृष्टि सर्वांगी है, एकांगी नहीं। यही कारण है कि 'वेद' अपनी अन्तर्दृष्टि से अनेकता में एकता देखते हैं। इसीलिए 'वेद' का ऋषि घोषणा करता है कि पूरा विश्व एक नीड़ है-यत्र विश्वंभवत्येकनीडम। इस नीड़ का प्रत्येक जीव, प्रत्येक पदार्थ एक-दूसरे का पूरक है न कि शोषक। वेदों की दृष्टि समग्र है, जो सभी के प्रति सम है। मनुष्य भी जब प्रकृति को इसी दृष्टि से देखेगा, तो 'ज्ञान' व 'विज्ञान' का संतुलन स्थापित हो जाएगा। इस संतुलन के फलस्वरूप निश्चित रूप से प्रकृति का किया जा रहा 'शोषण' 'दोहन' में परिवर्तित हो जाएगा और मानव जाति आनन्दपूर्ण तरीके से जी सकेगी। यदि आर्थिक प्रगति के नाम पर हम 'स्पेशल इकोनॉमिक जोन' के रूप में सुख का जो आभासी साम्राज्य खड़ा कर रहे हैं, वह एक दिन इस दुनिया को बर्बाद कर देगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. 'ऋग्वेदभाष्यम्', महर्षि दयानंद सरस्वती, सम्पादक परमहंस स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती, मानव उत्थान संकल्प संस्थान, नई दिल्ली, 2010.
2. 'ऋषि दयानंदकृत यजुर्वेदभाष्य में अग्नि का स्वरूप', कपिलदेव शास्त्री, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र.
3. 'ऐतरेय एवं तैत्तिरीय ब्राह्मणों के निर्वचन', सरोज दीक्षा, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989.
4. 'द हींस ऑफ द ऋग्वेद इन द संहिता एंड द टेक्स्ट्स', मैक्स मुलर, ट्रबनेर एंड कम्पनी, लंदन, यू.के., 1877. <https://books.google.co.in/books>.
5. 'ब्राह्मण ग्रंथों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति-शतपथ ब्राह्मण के विशेष संदर्भ में', धीरेन्द्र कुमार सिन्हा, पैनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली, 1990.
6. 'मैं एक हरिण और तुम इंसान', सुरेंद्र डी. सोनी, बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2013.
7. 'वेद मीमांसा', लक्ष्मीदत्त दीक्षित, गोविन्दराम हासानंद, नई दिल्ली, 1984.
8. 'वेद विद्या निदर्शन', भगवद्दत्त, इतिहास प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, 1959.
9. 'वैदिक संस्कृति का संदेश', सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, गोविंदराम हासानंद, नई दिल्ली, 1980.
10. 'शांतिदूत श्रीकृष्ण', लक्ष्मीदत्त दीक्षित, आर्य प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली, 1999.
11. 'होलिस्टिक अप्रोच ऑफ द वेदाज', प्रो. दयानंद भार्गव, महर्षि संदीपनी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, 2007.